RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-06
June-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

गुप्तोतर कालः– सामाजिक मूल्यांकन

डॉ0 मनोज कुमार देव
इतिहास विभाग, नया टोला, टपका कटिहार

विभिन्न स्रोतो तथा महत्वपूर्ण पुस्तकों के आधार पर यह माना जाता है कि गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। सच कहा जाय तो गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तरप्रदेश और बिहार में था। इस साम्राज्य के संस्थापक श्री गुप्त थे । जिसने प्रयाग के निकट कौशाम्बी में नीव डाली। हालांकि प्रभावती गुप्त के पूजा ताम्रपत्र अभिलेख में श्रीगुप्त सम्राट को आदिराज कहकर सम्बोधित किया गया है। गुप्त सम्राटों द्वारा दीर्घकालीन शान्ति कायम की जाने के परिणाम स्वरुप देश में आर्थिक जीवन के सभी पक्षों में व्यापक उन्नति हुई और देश खुशहाल हुआ। यद्यपि सामाजिक जीवन में उदारता थी फिर भी अनेक क्षेत्रों में रुढ़िवादिता का प्रभाव देखने को मिली।

गुप्त काल के महान सफलता इस तथ्य को लेकर कही जा सकती है कि उन्होने शक तथा कुशाणों के विदेशी शासन को समाप्त किया । फलतः जिस प्रकार शुंग काल में वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर समाज के संगठन का प्रयास किया गया था। ठीक उसी प्रकार गुप्तकालीन समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का पुर्नगठन किया गया लेकिन गुप्त सम्राटों का दिग्विजय बहुत ज्यादा व्यापक और स्थायित्व का उल्लेख मिला है, जिसके चलते इस काल की वर्ण व्यवस्था में उदार दृष्टिकोण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । गुप्तकाल के अभिलेखों मे जातियों का कम उल्लेख मिलता है। प्रायः वर्णों का उल्लेख किया गया है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि विभिन्न वर्णों के कर्तव्य पालन पर अधिक बल दिया गया था।इस वर्ण व्यवस्था में गतिशीलता भरी पड़ी थी तथा व्यवसायों के परिवर्त्तन और अर्न्तजातीय विवाहों में इस गतिशीलता उदार नीति का अनुभव किया जा सकता है। इतना ही नही राजाओं के कर्त्तव्यों में वर्ण व्यवस्था की रक्षा का भी उल्लेख परम्परागत रुप से अभिलेखों में मिलता है, लेकिन राजाओं के अधिकार में क्षत्रिय के अलावे ब्राह्मण , वैश्य और शूद्र भी थे। वस्तुतः धर्म में उदारता, आर्थिक क्षेत्र में आमूल – चूल समृद्धि , सामाजिक क्षेत्र में गतिशीलता इस गुप्त काल की खास विशेषताएँ है। इन समाजिक गतिशीलता के अनेक महत्वपूर्ण कारण था– विदेशियों का भारतीय समाज में सम्मिलित होना, अर्न्तजातीय विवाह होना, बहुसंख्य आदिवासी समाजों को शिल्पकारों के रुप में शूद्र में शामिल करना।

ब्राह्मणों की स्थिति–

गुप्त काल में वैदिक धर्म का नवीन स्वरुप वैष्णव धर्म के रुप में स्थापित हुआ था। इससे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता भी स्थापित हुई । पर हाँ, व्यवसायों की शिथिलता का उनकी स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड़ा। जातियों में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों का कर्त्तव्य अध्ययन–अध्यापन, धार्मिक कर्मकाण्ड, दान ग्रहण करना था। कुमार गुप्त प्रथम के कमरदण्डा अभिलेख में ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है, जो स्वाध्यायी और धर्मशास्त्रों के ज्ञाता थे। यह भी बताते चले कि गुप्त सम्राट के संबंध में अनेक इतिहासकार ऊहापोह में है कि वे ब्राह्मण जाति के थे कि नही ? इसी उधेर–बून के बीच कतिपय इतिहासकार गुप्तों को ब्राह्मण मानते है। उन विद्वानो में डॉ राय चौधरी, डॉ रामगोपाल गोयल व डॉ उदयनारायण राय का नाम प्रमुख रुप से लिया सकता है। इन विद्वानो ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये है–

गुप्त शासक चन्द्रगुप्त–II ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन –II के साथ किया था । वाकाटक ब्राह्मण थे, फलतः माना जाता है कि गुप्त भी ब्राह्मण ही रहे होगें।

वाकाटक अभिलेखों में प्रभावती गुप्त को धारण गोत्र का बताया गया है। स्कन्दपुराण से ज्ञात है कि धारण ब्राह्मणों का गोत्र था, अतः गुप्त भी वाकई ब्राह्मण ही थे। सच में यदि गुप्त–वंश ब्राह्मणेत्तर राजवंश होता तो उक्त वैवाहिक संबंध प्रतिलोभ विवाह के तहत् आता, जिसमें वधु वर से श्रेष्ठ वर्ण की होती है। स्मृतियों में प्रतिलोभ विवाह की कटु आलोचना की गयी है। अतः उक्त प्रकार के वैवाहिक संबंध द्वारा गुप्त शासक ब्राह्मण धर्म के किसी नियम की अवहेलना नही कर सकते है। अतः गुप्त ब्राह्मण रहे होगे। इतना ही नही शासक शान्तिवर्मण के तालगुंठ अभिलेख से कदम्ब व गुप्तों के मध्य वैवाहिक संबंधों के विषय में भी पता चलता है, कदम्ब ब्राह्मणों थे, अतः गुप्तों का ब्राह्मण होना प्रमाणित होता है, पर उपरोक्त तर्को के आधार पर गुप्तों को ब्राह्मण स्वीकार नही किया जा सकता व इन तर्कों का सरलतापूर्वक खण्डन किया जा सकता हैः–

विवाह अर्न्तजातीय भी हो सकता है। प्राचीन भारत में ऐंसे अनेक उदाहरण मिलते है जहाँ क्षत्रिय और वैश्य अपने पुरोहित का गोत्र धारण कर लेते थे। फलतः प्रभावती गुप्त का धारण गोत्र उसे ब्राह्मण प्रमाणित नही करता है। बुद्धगुप्त के एरण अभिलेख में महाराज मातृविष्णु का विप्रर्षि, स्वकर्मनिरत,

RRIJM 2015, All Rights Reserved

यज्ञकर्त्ता कहा गया है। मातृबिष्णु ब्राह्मण था, जिसने क्षत्रीय – धर्म ग्रहण कर लिया था। मनु और वशिष्ट ने ब्राह्मणो को आपद धर्म के रुप में क्षत्रिय धर्म की अनुमति दी थी। पराशर स्मृति ब्राह्मणों को वैश्यों के व्यवसाय करने की अनुमति देती थी। वाकाटक शासक ब्राह्मण थे।इस काल में बहुसंख्य ब्राह्मणों का आमात्यों, राज्याधकारी सैनिक, प्रशासक के रुप में उल्लेख प्राप्त होता है। कही कही तो ऐसा भी उदाहरण प्राप्त होते है कि ब्राह्मणों ने वैश्यों के व्यवसायों को ग्रहण किया था। मृगच्छकटिक नाटक का प्रमुख पात्र चारुदत्त ब्राह्मण है और वीणा कार्य कर रहा है।

इस काल में स्मृतियों ने ब्राह्मणों के विशिष्ट अधिकारों तथा उनकी सवौच्चता के प्रावधानों को पुष्ट किया है। वाराहमिहिर ने वृहदसंहिता में ब्राह्मणों के लिए नगर में अलग अलग आवास की व्यवस्था का उल्लेख देखने को मिलती है। वे विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न प्रकार के भवनों का भी प्रावधान करता है। नारद स्मृति में ब्राह्मणों को करो से मुक्त रखा गया है। पूर्व स्मृतियों में तो ब्राह्मणों को दण्ड व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की छूट प्रदान की गयी थी। नारद स्मृति में इस बात की पुष्टि की गयी है। इसमें कहा गया है कि ब्राह्मणों को मृत्युदंड नही दिया जा सकता था। उसका अधिकतम सजा(दण्ड) निर्वासन मात्र था। परन्तु साक्ष्य के मामले में नारद स्मृति मे पूर्व व्यवस्था को अस्वीकार कर सभी वर्णों के साक्ष्य के समान मान्यता प्रदान की है। इस काल की एक अन्य विशेषता ब्राह्मण का प्रवर तथा गोत्र के आधार पर उपवगों में विभाजित करना था। साथ ही दान पत्रों से पता चलता है कि अधिकांश ब्राह्मण सामवेदी तथा यजुर्वेदी थे। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वश्रेष्ठ या केवल धार्मिक ग्रन्थों से ही नही अपितु विदेशी यात्रियों के वृतांत से भी इस बात की पुष्टि होती है। हवेन सांग ने लिखा है कि अनेक वर्ण और जातियों में ब्राह्मण सबसे अधिक पवित्र है और उन्हे सबसे अधिक सम्मान मिलता है।

क्षत्रियों की स्थिति –

गुप्तकाल में क्षत्रिय की स्थिति संतोषजनक ही नही वरण् कर्मठता , कर्त्तव्यपरायणता की भावना से ओत–प्रोत था। इनका कर्त्तव्य अध्ययन, दान और रक्षा करना था। गुप्तकालीन अभिलेखों में क्षत्रियों का उल्लेख नही मिलता है। धर्मशास्त्रों में क्षत्रियों के लिए भी आपद् धर्म के रुप में निम्न वर्ग का व्यवसाय करने की अनुमति दी गयी है। इतना ही नही इस काल में अनेक क्षत्रियों ने वैश्यों के व्यवसाय को अपना लिया था। स्कन्दगुप्त के काल में एक ताम्र अभिलेख से यह जानकारी मिलती है कि तैलिय श्रेणी का एक सदस्य क्षत्रिय था। इस काल में विदेशी जातियों को भारतीय समाज में सम्मिलित किया जा रहा था, यद्यपि यह प्रक्रिया मौर्यतर काल में ही आरम्भ हो गयी थी। इस तरह स्वाभाविक था कि विदेशी युद्ध–प्रिय जातियों के भारतीय समाज मे धुलमिल जाने से क्षत्रिय वर्ण में भी उपजातियों का निर्माण हो रहा था। इस काल के साहित्य में क्षत्रियों के विभिन्न उपभेदी जैसे – सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी , पुरुवंशी, क्रथकैशिक, नीपवंशी, पांड्य आदि का उल्लेख मिलता है।

इस युग की महत्वपूर्ण घटना राजपूतों का अभ्यूदय है, जिन्होने प्राचीन क्षत्रियों का स्थान ले लिया था। प्राचीन ग्रंथो में राजवंश के कुमारो को राजपुत कहा गया है किन्तु इस काल में यह शब्द लड़ाकू जातियों और सांमत वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। इन युद्धप्रिय जातियों ने अपने राजवंश स्थापित कर लिये थे।इनके अधीन अनेक सामंत थे जिन्हे राज्य के अंतर्गत भू भाग विशेष में शासक नियुक्त कर दिया गया था। वेतन के बदले उन्हे शासन– क्षेत्र के अंतर्गत भूमि पर सभी राज्याधिकार दे दिये गये थे। अनेक विद्वान इतिहासकार का मानना है कि 12 वी0 शताब्दी तक राजपूतों की 36जातियाँ प्रसद्धि हो गयी थी, जैसे चालुक्य, चौहान, प्रतीहार, परमार, गुहिल, चंदेल, कछवाहा, मेद आदि। ये सभी क्षत्रिय कहलाने लगे। इस युग में कई अक्षत्रिय राजाओं का भी उल्लेख है। ह्मनत्सांग ने मणिपुर और सिंधदेश के राजा को शुद्र कहा है, कामरुप का शासक ब्राह्मण था। बंगाल के सातवीं सदी के लेख में एक शुद्र राजा उल्लेख है। दक्षिण में अनेख लेख प्राप्त हुये है जिनमें नायक तथा रेडडी वंश के शासक अपने को शुद्र कहते है। इस वास्तयिकताओं को ध्यान में रखकर मनु के टीकाकार मेधातिथि ने लिखा है कि राजा शब्द अक्षत्रिय के लिए भी प्रयुक्त हो सकते है बशर्ते कि वह राज्य का स्वामी हो, दूसरे शब्दों में यह अनिवार्य नही है कि राजा क्षत्रिय ही हो।

इत्न खुर्दादब ने क्षत्रिय के दो वर्गों का उल्लेख किया है– सवूकफूरिया और कतरिया। अल्तेकर के अनुसार सवूकफूरिया सत् क्षत्रिय थे। इसके अंतगर्त राजवंश और सामंत वर्ग और योद्धा क्षत्रिय वर्ग को सम्मिलित किया गया। कतरिया साधारण क्षत्रिय थे जो कृषि, व्यापार इत्यादि व्यवसायों से भी आजीविका चलाते थे। आहार अभिलेख में क्षत्रिय व्यापारी 'साहाक' का उल्लेख है। अलबरुनी के वृत्तांत से पता चलता है कि राजपूत क्षत्रिय ब्राह्मणों के सामान समझे जाते थे किन्तु खेतिहर क्षत्रिय और वैश्य बराबर थे।

वैश्य की स्थिति –

धर्मशास्त्रों के अनुसार वैश्यों का मुख्य कार्य वाणिज्य , पशुपालन और कृषि था। इस प्रकार के कार्यों में उन्हे शूद्रों का सहयोग लेना पड़ता था। इससे स्मृतियों में वैश्यों का स्थान नीचा करके उन्हें शूद्रो के समकक्ष कर दिया गया, लेकिन व्यवहारिक रुप में वैश्यों का स्थान बहुत नीचा नही था और समाज में उनकी प्रतिष्ठा तथा सम्मानजनक स्थान था। इस काल में उन्हे वणिक , श्रेष्ठि, सार्थवाह कहा गया है। वैश्य लोग समृद्ध थे, उनके दान देने के अनेक उदाहरण देखने को मिलती है। फाह्मान कहता है कि धनी वैश्यों ने

नगरो में औषधालय स्थापित किया था। वह अनेक स्थानों पर पंथ–शालाओं की चर्चा करता है, जहाँ यात्री विश्राम करते थे। वैश्यों को व्यवसाय बदलने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। लाट क्षेत्रों से जब तन्तुवाय श्रेणी दसपुर (मन्दसौर) आयी, तब उस श्रेणी के कई सदस्य सैनिक, विद्वान चारण बन गये लेकिन व्यवसाय बदलने से उनका वर्ण यथावत रहा। यह सब होते हुये भी रुढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था में वैश्यों को महत्वपूर्ण स्थान नही मिला। खानपान तथा अन्य प्रकार के सामाजिक व्यवहार में वैश्य शूद्र के अधिक समीपता दिखी । वैश्यों के लिए वैदिक संस्कार सिद्धांत रुप से अनुमत थे किन्तु अलबरुनी ने लिखा है कि वैश्यों और शूद्रों को वेदों के अध्ययन या श्रवण की अनुमति नही थी वास्तविक स्थिति यही मालूम पड़ती है। अलबीरुनी ने आगे लिखा है कि यदि यह सिद्ध हो जाए कि वैश्य और शूद्रों ने वेद–पाठ सुना है तो ब्राह्मण उन्हे न्यायधीश के पास ले जाते है और उनकी जीभ काट दी जाती है। अलीबीरुनी ने वैश्यों और शूद्रों के सामाजिक स्तर में कोई भेद नही देखा है। उसके अनुसार वे नगर और गाँवों में एक साथ रहते थे और कभी–कभी एक ही कारण हो सकता है। उन्हें कई बस्तुओं में व्यापार करने की अनुमति दी गई थी। इस युग में वैश्य वर्ग वैष्णव धर्म तथा जैन धर्म का अनुयायी था। पुराणों में अनेक धनी वैश्यों की कथाएँ है जिन्होने प्रभूत धनराशि दान देकर पुण्य लाभ उठाया । जिस प्रकार प्राचीन काल में वैश्यों ने बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया उसी प्रकार पूर्व मध्यकाल में वैष्णव और जैन धर्म में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान , कर्नाटक तथा गुजराज में जैन धर्म के प्रसारण में वैश्यो की समृद्धि प्रमुख कारण है।

धर्मशास्त्रों में वैश्यों के लिए कृषि, पशुपालन और व्यापार जैसे व्यवसाय निर्दिष्ट किए गए है और पाराशर ने कुसीद वृत्ति (सूद पर रुपये उधार देना) वैश्य का व्यवसाय बताया है। बौद्ध , जैन, और वैष्णव धर्म में प्रतिपादित अहिंसा–सिद्धान्त के प्रभाव से वैश्यों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कृषि कर्म तथा पशुपालन छोड़ दिया था और व्यापार को अपनी आजीविका का साधन बना लिया था। भविष्यत– कथा में एक वैश्य के संबंध में कहा गया है कि उसने नावों को खरीदने के लिए अपने पशु भी बेच दिए। माध के शिशुपालन वध में व्यापारियों को राजा की सेना के साथ यात्रा करते हुए तथा फौजी खेमे में समान बेचते हुए प्रस्तुत किया गया है। अब तक उपलब्ध अभिलेखों से पता चलता है कि बंगाल , बिहार, गुजरात और मालवा में वैश्य वर्ग के लोग अपनी समृद्धि के कारण समाज में प्रभावशाली हो गए थे और राजनीतिक पदों के लिए स्पर्द्धा करते थे। बिहार प्रदेश से प्राप्त आठवी सदी के ' दूधपाणि ' अभिलेख से ज्ञात होता है कि उदयमान नामक एक समृद्ध व्यापारी ने तीन गाँव के लोगों की ओर से राजकीय कर दिया । इस गाँव के लोगों ने उदयमान को अपना प्रभु (राजा स्वीकार कर दिया) बंगाल में सेना राजा लक्ष्मणसेन के समय सुवर्ण के व्यापारी इतने समृद्ध थे कि वे अपने धन और वैभव के कारण राजा का विरोध करने लगे और राजा से युद्ध करने पर उतारु हो गए। दंडस्वरुप राजा ने उन्हे जाति से बहिष्कृत कर दिया चालुक्य नरेशों से भी गुजरात के कई समृद्ध व्यापारियों का संघर्ष हुआ। उदयपन, तेजपाल इत्यादि धनी व्यापारी मंत्रिपद पर नियुक्त थे । जयसिंह सिद्धराज के राज्यकाल में कई व्यापारियों को सामंत की पदवी दी गई थी,

शूद्रो की आर्थिक स्थिति–

शूद्रो की पर्याप्त उन्नति के बावजूद उनकी सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्त्तन नहीं दिखाई देता। स्मृति तथा निबंधो में साधारणतया सेवा और शिल्प शूद्र की व्यवसाय निर्धारित किया गए है। कुछ स्मृतियो के अनुसार उच्छिष्ट गृहभृत्य के लिए है, स्वतंत्र शूद्र के लिए नहीं । मेधातिथि के अनुसार शूद्र के लिए आवश्यक नही कि वहा द्विजातियों की सेवा से आजीविका चलाए। इस काल की स्मृतियों तथा निबंधो में भी सेवावृत्ति के अतिरिक्त शूद्र के लिए अन्य अनेक व्यवसाय निर्धारित किए गए है जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति में निश्चित सुधार हुआ। अति , देवल तथा पाराशर ने शूद्र के लिए सेवा के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन , वाणिज्य तथा शिल्प उपयुक्त व्यवसाय बताए है। उशना ने व्यापार और शिल्प, शूद्र की आजीविका के साधन बताए है। बृहस्पति की परिभाषा के अनुसार स्वर्णकार, लोहार, चर्मकार (चमार), तंतुवाय(जुलाहा) के कार्य शिल्पों के अन्तर्गत जाते है। ब्रह्मवैवत पुराण और पदम् पुराण के अनुसार कुंभकार, बढ़ई, संगतराश (पत्थर का काम करने वाले) , लौहाकार इत्यादि से संबंद्ध शिल्प शूद्रों के लिए निदिष्ट किए गए है।

इस काल में शूद्रों की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार हुआ था। याज्ञवल्वय ने शूद्रो को व्यापार, शिल्प और कृषि करने की अनुमति दी है। इस काल में शूद्र वर्ण के लोग कृषक तथा शिल्पी थे। किसानों के रुप में उनका उल्लेख बार–बार प्राप्त होता है। कृषि मजदूर प्रायः सभी शूद्र थे, साथ ही यह भी सम्भव है कि शूद्र भूमि – स्वामी भी मिलते हों। गुप्त काल की आर्थिक समृद्धि से शिल्पकारों के जीवन का स्तर ऊँचा उठ गया था। बृहस्पति स्मृति में उल्लेख है कि शूद्र के व्यापार करने के अधिकार को स्वीकार किया गया है। सामान्य श्रमिकों को शूद्र की श्रेणी में रखा गया है। इन सामान्य श्रमिकों के अन्तर्गत तीन प्रकार के श्रामिक थे– सेना में काम करने वाले श्रामिक , कृषि– श्रमिक और भारवाहक श्रामिक। शूद्रो को पंचमहायज्ञ करने तथा रामायण एवं महाभारत सुनने का अधिकार था। मत्स्य पुराण में शूद्रों को मोक्ष पाने का अधिकार था। मत्स्य पुराण में शूद्रों को मोक्ष पाने का अधिकार बताया गया है। वे दान देने तथा यज्ञादि जैसे कर्म कर सकते है। शूद्र सेना मे पदाधिकारी थे। ह्वेनसांग ने मतिपुर के शूद्र राजा का उल्लेख किया है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष

निकलता है कि आर्थिक समृद्धि तथा परिवर्तनों से शूद्रों की स्थिति में सुधार हुआ था।

अस्पृश्यता –

फाह्यान के वर्णन से इस बात की जानकारी मिलती है कि गुप्त कालीन समाज में एक अस्पृश्र्य वर्ग अस्तित्व में था। फाह्यान के अनुसार वे नगर के बाहर निवास करते थे और केवल दिन में नगर में प्रवेश करते थ। वे ढोल बजाते हुए नगर में प्रवेश करते थे ताकि लोग उनके स्पर्श से बच सके। ढोल सुनकर लोग अपने घरों के दरवाजें और खिड़कियाँ बन्द कर देते थे जिससे उन पर दृष्टि न पड़े । उन पर दृष्टिमात्र पड़ने से द्विज अपवित्र हो जाता है, यह अस्पृश्यता का निकृष्ट रुप था। तात्कालीन स्मृतियो में शुद्धि के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है। स्मृतियों में अस्पश्यों को चाण्डाल, अन्त्यज तथा प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न बताया गया है। उनकी वृत्तियों में जानवरों का शिकार, मछली पकड़ना, श्मशान की देखभाल करना था। इस काल में अस्पृश्यता विकसित ही नहीं हुई बल्कि चाण्डालों की संख्या में भी वृद्धि हुई।

दास प्रथा–

इस काल में दास प्रथा का प्रचलन था। कुछ शूद्र दासों की श्रेणी में रखे थे। नारद स्मृति में पन्द्रह प्रकार के दासों का उल्लेख प्राप्त होता है लेकिन अन्य स्मृतियों में कहा गया है कि दास का वर्ण स्वामी के वर्ण से ऊँचाा नही होना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण को छोड़कर अन्य वर्गदास की श्रेणी में आते है। महाभारत तथा कत्यायन व नारद स्मृतियों में मनुष्यों को बेचने की निन्दा की गई है, फिर भी इसीप्रकार का क्रय–विक्रय की प्रथा प्रचलित थी। अमरकोश में दासीसमम् अर्थात् दासियों के दलो का उल्लेख प्राप्त होता है। इस काल की स्मृतियों में दासों के प्रति उदार दृष्टिकोण का उल्लेख मिलता है। नारद स्मृति में दासता से मुक्ति के लिए अनुष्ठान की व्यवस्था की गई है। इससे यह जान पड़ता है कि इस काल में दास प्रथा शिथिल हो रही थी। इसका कारण यह है कि इस काल में वर्ण व्यवस्था दुर्बल हो गई थी । रामशरण शर्मा लिखते है ऐसा लगता है कि वर्ण व्यवस्था ही शिथिल पड़ गई थी और इसके चलते दासप्रथा में कमजोरी आयी । वर्ण व्यवस्था का नियम था कि शूद्र को दास बनाना चाहिए, पर गुप्तकालीन पुराणों के वर्णन से ज्ञात होता है कि वैश्य और शूद्र अपने वर्ण – धर्म का पालन नहीं करते थे।

उपजातियाँ –

गुप्तकाल में कायस्थों का उल्लेख प्राप्त होता है जो राज्य का अधिकारी वर्ग था लेकिन इस वर्ग ने अभी तक जाति का रुप ग्रहण नही किया था। इस काल में कुछ मिश्रित अथवा उपजातियों का निर्माण हुआ है, जैसे– मूर्द्धाणषिक्त, करण, अम्बष्ठ, पराशव, उम्र। अन्य उपजातियों में प्रमुख रुप से मगध , रथकार, कर्मकार, चर्मकार, मणिकार गोपाल, वणिक आदि का उल्लेख किया गया जो स्पष्ट रुप से वर्ण के तहत नही आती थी।

स्त्रियों की दशा–

गुप्त काल के साहित्य व कला में नारी का आदर्शमय चित्रण है किन्तु व्यावहारिक रुप में उनके अधिकारों में कटौती कर दी गयी थी । साहित्य में नारी के चरित्र का आदर्श वर्णित किया गया है। महाभारत पत्नी के बिना जीवन को शून्य मानता है, रधुवंश में अज अपनी प्रिया को सखी , सचिव एवं प्रिय शिष्या कहता है, स्वप्नवास–वदत्ता में उदयन वासवदत्ता को प्रिये और प्रिये शिष्ये कहता है लेकिन वास्तविक जीवन में स्थिति निम्न थी। वाल्यावस्था में विवाह का होना तथा सती प्रथा इसी काल में प्रचलित हुई । कन्या को इस काल में समस्या समझा जाने लगा और उसकी सुरक्षा पर जोर दिया गया। कालिदास के नाटकों तथा मृच्छकटिक में सती प्रथा का उल्लेख मिलता है।

मनुस्मृति में स्त्री द्वारा वैदिक मन्त्रों के उच्चारण पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। गुप्त काल के पहले स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द कर दिया गया। इससे उनकी धर्मिक शिक्षा प्रतिवंधित हो गई। इसके बाद उन्हे लौकिक शिक्षा प्राप्त होती रही। कामसूत्र में शिक्षित महिलाओं का उल्लेख मिलता है। वे संगीत, गृहकला, चित्रकला में पारंगत होती थी। यह लौकिक शिक्षा केवल उच्च वर्ग की महिलाओं तक सीमित थी। अमरकोश में उपाध्या और आचार्य का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। बाल विवाह का प्रचलन उत्तरोतर बढ़ता जा रहा था। स्मृतिकारों का सामान्य मत से प्रतीत होता है कि रजस्वला होने से पहले ही कन्या का विवाह कर दिया जाये लेकिन वयस्क कन्याओं का विवाह भी प्रचलित था, यह कामसूत्रा से पता चलता है। इस काल के साहित्य में भी नायिकाओं को वयस्का में रुप में प्रस्तुत किया गया है।

इस काल में पर्दा प्रथा प्रचलित नही थी। स्त्रियाँ प्रशासन तथा सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेती थी। गुप्त राजमहिर्षियों का मुद्राओं पर अंकन किया गया है। गुप्त राजकुमारी प्रभावती गुप्त ने अपने अल्पवस्यक पुत्रों की संरक्षिका के रुप में वाकाटक राज्य का संचालन किया था। काणे का मत है कि इस युग की स्मृतियों में स्त्रियों की शिक्षा अथवा विवाह के विषय में जिन प्रतिबन्धों का उल्लेख किया गया है, वे केवल ब्राह्मण कन्याओं के लिए थे। अभिलेखों में लक्ष्मी द्वारा स्कन्दगुप्त का वरण अथवा मातृगुप्त का लक्ष्मी द्वारा स्वेच्छा से वरण करना स्वयम्बर प्रथा प्रचलित होने को प्रमाणित करता है। ध्रुवदेवी प्रकरण से विदित होता है कि स्त्रियाँ विशेष परिस्थितियों में पुनर्विवाह कर सकती थी

। सती प्रथा प्रचलित हो गयी। 510 ई0 के एरण अभिलेख में गोपराज नामक सेनापति को पत्नी के सती होने का उल्लेख है। इस काल मे गणिकाओं तथा मन्दिरों में देवदासियों का उल्लेख भी प्राप्त होता हैं।

इस काल में परिवार संयुक्त प्रणाली पर आधारित थे। फाह्मान ने लोगो के पवित्र आचार– विचारों का वर्णन किया है। लोगों का जीवन सुखमय था। उनका जीवन श्रृंगार तथा मनोरंजन से परिपूर्ण था।

मूल्यांकन–

निष्कर्षतः कहा जा सकता ह कि गुप्त काल का साम्राज्य अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि इस काल मे खासकर परंपरागत वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातियों का निर्धारण तो हुआ, पर सभी जातियों में सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मण समुदाय को ही माना गया। ये समाज के पंथ प्रदर्शक, ज्ञानदाता के साथ समाजसुधाकर भी थे। परन्तु अन्य जातियों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को भी समाज के नवनिर्माण , विकास के प्रगति पथ पर, लाने में अहम भूमिका अदा करते हुए उसे सहयोगात्मक प्रयास के साथ सामजस्यतापूर्वक भाईचारा की भावना से गुप्तकाल के सामाजिक बदलाव में चार चाँद लग गया।

संदर्भ सूची

1. भारत का इतिहास– पेज न0– 136 से 141 लेखक– रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली , 2000
2. इतिहास – पेज नं0 – 254 से 257 तथा 334 से 338 लेखक– डॉ0 ए0 के0 चतुर्वेदी, प्राचार्य , परिष्कार कॉलेज ऑफ ग्लोबल एक्सीलेंस, जयपुर(राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) 2018
3. भारतीय सामंतवाद – पेज नं0– 122 से 131 लेखक– रामशरण शर्मा 2002
4. प्राचीन भारत का इतिहास– 372 से 376 संपादक– द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली 2001
5. इतिहास– भारतीय इतिहास का विषय–बस्तु पेज नं0– 36 से 37 लेखक– डॉ ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव 2019

RRIJM 2015, All Rights Reserved